ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 264-267

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

आर्थिक स्वतंत्रता और घायल स्त्री–चेतना

प्रियेश कुमार तिवारी
E-mail: sinugupta@gmail.com

Received- 25.07.2021, Revised- 30.07.2021, Accepted - 04.08.2021

सारांश : ***'हमारे समय में एक चुटकी सिंदूर पर ही परिवार की एक इकाई गठित करने का दारोमदार है। पीलापन लिए हुए पारद से बना यह यौगिक चूर्ण स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को पुरूष के अधीन करने का प्रमाण–पत्र बन जाता है। सात जन्मों के लिए इस अधीनता को एक सामान्य धार्मिक–सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। यद्यपि विज्ञान और शिक्षा के बढ़ते प्रभाव ने धार्मिक रूढ़ियों को कुछ हद तक कम किया है और स्त्री–पुरूष दोनों को ही सेचने और चिंतन तथा विमर्श के लिए एक खुला आकाश दिया है फिर भी व्यापक जन समुदाय में मन के तंतुओं की बनावट अभी बदली नहीं है। भूमंडलीकरण के दबाव से शहर से गांव तक वह समाज–व्यवस्था तथा आर्थिक–सामाजिक ढांचा चरमरा रहा है जिसकी बुनियाद मे नारी–परितंत्रता और पुरूष सत्ता की हनक की ईंटें, दलित जन समुदाय के शोषण की सीमेंट से जमाई गई हैं, लेकिन पुरूष के मन से और खुद नारी के मन से भी अभी तक वह विचार सत्ता हट नहीं पाई है जो परिवार के लिए किसी भी स्वत्व के त्याग और सुखों के बलिदान हेतु सबसे पहले स्त्री को ही प्रस्तुत करती है।***

कुंजीभूत शब्द–पीलापन,यौगिक चूर्ण, स्वतंत्र अस्मिता, चिंतन तथा विमर्श।

व्यापक जन–मानस में अभी भी यह विचार ग्रथि की तरह बना हुआ है कि परिवार–संचालन के लिए आवश्यक धन मुहैय्या कराने का दायित्व मुख्य रूप से पुरूष का है और घर–गृहस्थी तथा बच्चों को संभालने का नैतिक दायित्व मुख्य रूप से पुरूष का है और घर–गृहस्थी तथा बच्चों को संभालने का नैतिक दायित्व स्त्री का है। इसीलिए स्त्री को गृहणी और हाउस वाइफ की एक अलग श्रेणी दी गई है। घर–गृहस्थी से बाहर स्त्री की आशाओं–आकांक्षाओं, क्षमताओं व योग्यताओं को महत्व देने तथा उसका मूल्यांकन करने का रिवाज अभी तक हमारे समाज में आम नहीं हुआ है।

हिंदी की वरिष्ठतम कथाकार मन्नू भंडारी की कहानी 'नई नौकरी', स्त्री और पुरूष दोनों ही में इस संवेदना से संबंधित मनोभावों को बड़े संतुलित ढंग से, बड़ी खूबसूरती और कलात्मक ऊंचाई से अभिव्यक्त करती है। इस कहानी की विशेषताओं में से एक यह भी है कि इसमें कहीं भी मुखर होकर स्त्री का पक्ष नहीं लिया गया हैं। बातों और परिस्थितियों को केवल निष्पक्ष होकर कलात्मक से रखा भर गया है। उतने भर से लेखिका का मकसद पूरा हो जाता है। ऐतिहासिक और सामाजिक सच्चाईयां अपने पक्ष में बड़े–बड़े शब्दों से प्रचार किए जाने की मांग नहीं करतीं, बस निष्पक्ष होकर प्रकट कर दिए जाने भर की अपेक्षा रखती हैं। उन सच्चाइयों का आंतरिक बल और जिजीविषा स्वयं ही संवेदनशील लोगों की आत्मा में उतरकर उन्हें विमर्श के मकसद की ओर धकेल देता है।

यह ऐतिहासिक तत्य अब किसी से छिपा नहीं है कि पुरूष सत्तात्मक समाज ने खुद को स्थापित करने और बनाए रखने के लिए स्त्री को जीवन की मुख्यधारा से काटने के लिए कितना बड़ा जाल रचा है। मात्र आपने वर्चस्व, आनंद व सुविधा हेतु उपयोगी साधन के रूप में बनाए रखने के लिए पितृसत्तात्मक पुरूष–सत्ता ने दर्शन की भव्यता में छिपाकर बहुत से निर्मम तरीकों, झूठ और छल–छंद का सहारा लिया है, ले रहा है. पुराणों स्मृतियों की बड़ी–बड़ी घोषणाओं से लेकर कवियों, महाकवियों, काव्यों और महानायकों के सर्जकों तक की वाणियों में स्त्री के लिए आचार–संहिताओं के पन्ने दर पन्ने भरी फेहरिस्त, सप्तपदी और कर्मकाडों देवी–देवताओं की उपासना और कथावाचकों की शिक्षाओं, व्रत, तीज–त्यौहार तक हर कदम पर पुरूष और उसके परिवार के लिए स्त्री के त्याग–तपस्या की महिमा गाई जाती हरी है। इसकी अवहेलना, इससे इंकार और इसके विरूद्ध उठाने की भयानक सजाओं की फेहरिस्त और उदाहरणों की सूची भी उतनी ही लंबी है।

मन्नू जी की यह कहानी उस काल को प्रतिबिंबित करती है जब जमींदारी प्रथा को टूटे एक लंबा अरसा बीत चुका था। इसके परिणामस्वरूप सामान्य तौर पर संयुक्त परिवारों ने उल्टी सांस लेना शुरू कर दिया था। आजादी की लड़ाई में स्त्रियों की भागीदारी के असर तथा आधुनिकता व प्रगतिशीलता की रोशनी में औरतों के प्रगति–मार्ग से वे दीवारें टूट रही थीं जो स्त्री–शिक्षा के विरोध और बाल–विवाह के समर्थन द्वारा सदियों से मजबूती पाती रही थीं। अब आमतौर पर खाते–पीते घरों की लड़कियां विवाह के पूर्व उच्च शिक्षा के पायदान पर कदम रख चुकी होती थीं। स्त्रियों का नौकरी करना कोई असामान्य घटना नहीं रह गई थी, लेकिन फिर भी बहू का चुनाव करते समय लोग कहते थे कि हमको बहू से नौकरी नहीं करानी है। गांव से शहरों में विस्थापन और संयुक्त से एकल परिवार की स्थितियों में अंतरण के चलते स्त्रियों के समक्ष संयुक्त परिवार के अंदरूनी अंतर्विरोध पति–पत्नी के आंतरिक अंतर्विरोधों की शक्ल ले रहे थे। गांवों में संयुक्त परिवार के सामूहिक श्रम का बोझ शहरों में अकेली एक स्त्री के कंधों पर आ पड़ा था

शोध अध्येता– हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

जबकि पुरूष परिवारिक अर्थतंत्र में केवल अपनी नौकरी से बंधा होने के कारण अधिक मुक्त हो गया था।

ऐसे ही समय के एक बहुत साधारण से घटनाक्रम को कहानी में ढालते हुए मन्नू जी की हिरावल चेतना ने इसमें एक असाधारण कौशल से छुपाकर स्त्री–विमर्श का बीज भी डाल दिया है। कहानी पढ़ने के बाद यह बीज पाठक के ह्रदय में जहां और जब नर्म और नम जगह पाता है वहां अंकुरित होकर आंतरिक विमर्श की सृष्टि करता है।

मन्नू जी नारी–विमर्श की एक प्रमुख अलमबरदार और सिद्धहस्त कहानीकार के रूप में किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। उनका रचना–विधान इतना सघन, सशक्त और सटीक होता है कि कम से कम शब्दों में वे अपने इच्छित अर्थ और भाव भर पाती हैं। कहानी का पहला ही वाक्य देखने में अति साधारण है, लेकिन जेहन में पहुचते ही अपना काम शुरू कर देता है–

'टाई की नॉट ठीक करते हुए कुंदन आदेश देता जा रहा था–'सोफे का कपड़ा कम पड़ गया है, तुम खुद लाकर दे देना। इनके जिम्मे कर दिया तो समझो सब चौपट। दरवाजे–खिड़कियों का वार्निश आज जरूर पूरा हो जाना चाहिए और देखो, प्लंबर आएगा तो जहां–जहां के नल और पाइप खराब हों, सब ठीक करवा लेना।

इस पैरा के पहले वाक्य को यूं भी लिखा जा सकता था–टाई की नॉट ठीक करते हुए कुंदन बोलता जा रहा था, लेकिन केवल एक शब्द 'आदेश' के प्रयोग से लेखिका पाठक को उसके अनजाने ही अपने विमर्श की राह पर बढ़ा ले जाती है। वे ऐसे भाव की सृष्टि कर पाने में सफल होती हैं, जैसे एक पति अपनी पत्नी से बात न कर रहा हो बल्कि एक ठेकेदार अपने कारिंदे को काम की सूची बता रहा हो। इसी तरह अगला वाक्य–'रमा पीछे खड़ी सामने के अहाते में पड़ते कुंदन के प्रतिबिंब को देख रही थी।' यहां 'पीछे खड़ी' पद का प्रयोग पाठक के संवेदनात्मक अवचेतन में बिना मुखर हुए, नामालूम ढंग से, रमा को कुंदन की अनुगामिनी के रूप में सम्प्रेषित कर देता है.

इस कहानी का मूल घटनाक्रम तो बहुत छोटा है, पर उसका विमर्श बड़ा है. विवाहित युगल रमा और कुंदन दोनों नौकरीपेशा हैं. रमा को कुंदन की अनुगामिनी के रूप में सम्प्रेषित कर देता है.

रमा अध्यापिका है और कुंदन किसी कंपनी में महत्वपूर्ण पद पर कार्यरत है। एक बच्चा भी है–बंटी, कुंदन को एक नई विदेशी कंपनी में बहुत आकर्षक तनख्वाह और सुविधाओं वाली नई नौकरी मिल जाती है। उस नौकरी के अनुसार स्वयं को ढालने के चक्कर में कुंदन रमा के ऊपर इतना काम लाद देता है कि मजबूरन रमा को अपनी नौकरी छोड़कर पूरी तरह हाउस–वाइफ बन जाना पड़ता है।

आर्थिक और मानसिकता रूप से स्वतंत्र तथा मजबूत स्थिति में खड़ी एक स्त्री के दोनों तरह से परतंत्र हो जाने की यह पष्चगति यात्रा, उसके कारक तत्व और उससे उपजे तनाव तथा उसमें विदेशी कंपनी की भूमिका ही कहानी का विवेच्य विषय है। भूमंडलीकरण के दौर में विदेशी कंपनियों के माध्यम से आती हुई प्रत्यक्ष पूंजी अपने साथ जो संस्कृति लेकर आई उसके अच्छे और बुरे दोनों प्रभाव भारत की पारिवारिक संस्कृति पर पड़े। इन प्रभावों की पड़ताल भी 'नई नौकरी' में है।

रमा को लग रहा था–''नई नौकरी के साथ कुंदन की सारी पर्सनेलिटी ही नहीं, बात करने का लहजा तक बदला गया है। रौब जैसा टपका पड़ता है। यह बदली हुई पर्सनेलिटी बोलने का लहजा और टपकता हुआ रौब एक आक्रामक संस्कृति के साहचर्य का परिणाम है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से देश में आती हुई विदेशी पूंजी की गर्भनाल से जुड़ी है यह आक्रामक संस्कृति. कार्पोरेट जगत की इस दबावकारी संस्कृति के प्रभाव में–'रमा को लगा जैसे कुंदन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है..... बहुत आगे जैसे वह अकेली रह गई है।'

पति–पत्नी जैसे आत्मीय और गझिन रिश्ते में बंधे दो इंसानों में अकेलापन भरती यह वित्तीय पूंजी जब हमारे देश के परंपरागत पूंजी स्त्री–उत्पीड़न की संस्कृति से गलबहियां करती है तो और भी भयानक हो उठती है। इस अमानवीय संस्कृति की मानसिकता क्रूरता का एक उदाहरण ही पर्याप्त है। कुंदन द्वारा लादे गए काम के बोझ से रमा अपनी नौकरी और प्रमोशन पर ध्यान नहीं दे पाती–

''दस साल पूरे हुए..... छ, आठ महीने में अपनी थीसिस समिट कर देती तो मेरा सेलेक्शन ग्रेड में आना निश्चित ही था, पर ऐसी हालत रही तो. .....'' रमा रो पड़ी.

दूर कहीं कुंदन के कानों में डॉ0 फिशर के शब्द गूंज रहे थे–जनवरी में जर्मनी से डाइरेक्टर आने वाले हैं, हमें यहां का सारा काम दिखाना होगा. ..... यू विल हैव टु बी वैरी सोशल..... लकिली योर वाइफ....." जब रमा अपने कुछ समय के सदुपयोग के लिए कुंदन से कहती है कि उसे हर जगह लेकर जाने के बजाय घर ही छोड़ जाया करे तो कार्पोरेट की कूटनीतिक मक्कारी कुंदन के मुंह से बोलती है–

''तुम्हें छोड़कर आज तक मैं कहीं गया हूं? ..... तुम तो जानती हो कि तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता.''

दूसरी तरफ है रमा की स्त्री सुलभ कोमलता जो उस समय उसकी भाषा में प्रकट होती है जब काम के बोझ से मजबूर होकर वह कॉलेज छोड़ने का अपना निर्णय सुनाती है–'मैं कॉलेज छोड़ दूंगी। इस तरह काम करने से तो नहीं करना ज्यादा अच्छा है।''स्वर में न कही तल्खी थी न शिकायत, बड़े सहज स्वर में उसने कहा था और 'अब निभता नहीं, कल उस्तीफा दे दूंगी'। यहां अपने पति से उपजी पीड़ा को

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

व्यक्त करने में संकोच बरता जा रहा है, सदियों के दर्द ने स्त्री को यह सहनशीलता और संकोच की कोमलता दी है जो उसे इस बात के लिए सावधानी बरतने को प्रेरित करती है कि पति के अहं को ठेस न लगने पाए। उसे यह अपराध–बोध न हो जाए कि उसी के असहयोगी रवैये और असह्य होने की सीमा तक बढ़ा दिए गए काम के बोझ के कारण ही रमा को अपनी नौकरी, अपने आर्थिक और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को त्यागना पड़ रहा है।

स्त्री के इस भाव के बरअक्स है पुरूष की आक्रामक कूटनीति, जो स्त्री के इस हृदय–स्पर्शी त्याग की गरिमा को मजाक ही मजाक में तुच्छता की सीमा तक कम कर देने की मनौवैज्ञानिक क्रूरता से बाज नहीं आती–''छोड़ो भी यार, वैसे भी क्या रखा है एंशिएंट हिस्ट्री पढ़ाने में. चोल–वंश, चेदि–वंश के बारे में न भी जानेंगे तो कौन सी जिंदगी हराम हो जाएगी.''

संवेदनशील नारी–हृदय को शब्दों की यह तलवार काट–काट कर इतने टुकड़ों मे विभक्त कर देती है कि औरत की अपनी अस्मिता, स्वत्व और गरिमा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।

पुरूष का पौरूष यहीं बस नहीं करता। अपने अह के बचाव के लिए अपनी आदिम ढाल भी उठा लेता है–'तुम्हें शायद लग रहा है कि मेरी वजह से, इस नई नौकरी की वजह से तुम्हें अपना काम छोड़ना पड़ रहा है ..... पर यह तो सोचो, मुझे तुम्हारे लिए, बंटी के लिए.....''

और फिर आखिरी हथियार–''मेरा संतोष तुम्हारा संतोष नहीं है, मेरी तरक्की, तुम्हारी तरक्की नहीं है?''

परिवार और रिश्ते की दुहाई देकर पुरूष आदिकाल से ही स्त्री को छलता आया है, उसकी सेवाओं, उसकी खूबियों का दोहन करता आया है। शुद्ध सामंती परिवेश में स्त्री–विमर्श केवल लोक गीतों में ही देखने को मिलता है, जहां औरत का सारा तत्कालीन दर्द अभिव्यक्ति पाता रहा है। आज के प्रगतिशील दौर में स्वतंत्र होती नारी सचेत रूप से स्त्री–विमर्श में अपनी सामूहिकता, प्रतिरोध व संघर्ष की चेतना के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है. आज स्त्री का दर्द, आक्रोश और स्वप्न, कहानियों में अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। इस कहानी में स्त्री–श्रम के दोहन की पुरूष–प्रवृत्ति का वर्णन लोकगीतों के दर्द जैसी अभिव्यंजना देता है। संयुक्त परिवार की बहू के श्रम–दोहन की त्रासदी को व्यक्त करते एक लोकगीत की कुछ पंक्तियां देखें– सासु खांची भर बसना मजावे रे ना

सासु पनिया पताल से भरवे रे ना
कई मनकूटीं भईया कई मन पीसी रे ना
भइया कई मन रीन्हीं अंसुइया रे ना

इसके बरअक्स 'नई नौकरी' में रमा के एक दिन के शारीरिक मानसिक दोनों श्रम का हिसाब देखें–''पर घर के लिए नया फर्नीचर बनवाने, चुन–चुन कर चीजें खरीदने के लिए दोनों में से किसी के पास भी समय नहीं था। कुंदन चाहता था कि यह काम रमा को ही करना चाहिए था कि यह काम उसी का था..... फिर उसकी सुरूचि और सुघड़ता के तो हल्ले भी थे मित्रों के बीच में, पर रमा के पास समय ही नहीं रहता। सवेरे उठकर वह बंटी को तैयार करके स्कूल भेजती फिर खुद तैयार होती तैयार होते–होते ही वह नौकर को आदेश देती जाती, सारे दिन का काम समझाती, नाश्ता करते–करते वह अपना लेक्चर तैयार करती, तैयार तो क्या करती बस सूंघ भर लेती. फिर कुंदन के साथ ही निकल जाती. तीन के करीब वह लौटती..... थोड़ा आराम करती और फिर शाम की तैयारी। बाहर नहीं जाना होता था तो घर में किसी को आना रहता था।'' लोकगीत में सासू मां के शासन का जिक्र है, कहानी में स्थितियां बदल गई हैं। शासन, वह भी पॉलिश्ड रूप में, पतिदेव का है–

''रात ग्यारह–साढ़े ग्याहर पर वह सोती तो थककर चूर हो जाती। कुंदन को उस समय हल्की–सी खुमारी चढ़ी रहती, कहता–'डोंट बी सिली। पार्टी में कैसे थक जाती हो? गाड़ी में बैठकर जाती हो..... खाना–पीना हंसी–मजाक, इनमें भी कहीं थका जाता है? गाड़ी में बिठाकर ले आता हूं।''

सुबह सोकर उठने से रात सोने जाने के पहले तक लगातार काम का यह सिलसिला औरत के लिए जैसे पहले सत्य था वैसे ही आज भी सत्य है। पुरूष इस थकन के प्रति जैसे पहले संवेदनहीन था वैसे ही आज भी है लेकिन सवाल उठता है कि मन्नू जी की यह आधुनिक नायिका अपनी पीड़ा और आक्रोश को स्वर क्यों नहीं देती। प्राचीनकाल में स्त्री कम से कम अपने भाई, मा, बाप को ही संबोधित करके अपनी पीड़ा और आक्रोश अभिव्यक्ति तो कर लेती थी लेकिन आज के आगे बढ़े हुए समाज में रमा अपने दर्द और आक्रोश को पीकर सहते जाने के लिए बाध्य क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर की खोज के लिए हमें पात्र की वर्गीय स्थितियों की गली में भी जाना पड़ेगा।

यह एक तथ्य है कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का चरित्र एक भीरू चरित्र है। यह बहुत जल्दी आहत भी होता है और बिना विद्रोह किए तकलीफों को सहते जाने की सामर्थ्य भी इसी में सबसे अधिक होती है। रमा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के महानगर में उच्च मध्यवर्ग की ओर बढ़ती स्त्री है। वह गांव या षहर की वर्ग–चेतन मजदूर स्त्री नहीं है जिसके पास खोने को सिर्फ दासता की बेड़ियां और जीतने को सारा संसार होता है। रमा के पास खोने को भी बहुत कुछ है इसलिए पुरूष के अधिनायक चरित्र के विरूद्ध उसमें लिमिलाहट, खीझ, दर्द और आंसू तो है किंतु विद्रोह और बदलाव के स्वर नहीं है। प्रतिरोध की सुगबुगाहट और संघर्ष की दृढ़ता नहीं है। इस दोहरे व्यक्तित्व को मन्नू जी ने बिना कोई सैद्धांतिक शब्दावली इस्तेमाल किए, केवल दो वाक्यों में जिस खूबी से प्रकट किया है वह उनसे सीखने की चीज है–''पर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

अकेलेपन की यह अनुभूति तभी तक रहती जब तक वह पोर्टिको में खड़ी रहती। जैसे ही लैट का दरवाजा खोलकर वह भीतर घुसती लक–दक फर्नीचर, शीशों के दरवाजों और खिड़कियों पर झूलते लंबे–लंबे परदे, मिस्त्रियों की खटपटाहट, नए–नए डिस्टेम्पर और वार्निश की गंध के बीच न जाने कहां डूब जाती.'' उसका यह आंतरिक द्वंद्व भी एक जगह लेखिका ने इशारों में व्यक्त किया है–''क्या सचमुच वह बड़े अफसर की बीवी बन गई है?–उसे मजाक में कसा हुआ जयंती का रिमार्क याद आया.''

कहानी का शीर्षक 'नई नौकरी' भी अपने आप में एक प्रतीक बन जाता है। कुंदन के एक–एक सीढ़ी ऊपर चढ़ने और रमा के एक–एक सीढ़ी नीचे उतरने की यह भाले जैसी नुकीली व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति मन्नू जी ने इतने संभालकर संकेतों में पाठक के समक्ष रखी है कि उनके सौंदर्यबोध और कहानी कला का कायल होना पड़ता है। नई नौकरी के अफसरी रूआब में कुंदन का व्यक्तित्व बदल रहा था और उसके वाक्य चुभने वाले थे–

''डोंट बी सिली. पार्टी मे थक कैसे जाती हो?''

''रमा तुम्हें टाइम की सेंस कब आएगी?''

''अरे डार्लिंग, आओ न! तुम औरतों का भी बस एक बार चरखा चल जाए तो खत्म ही नहीं होता।''

रमा के नौकरी छोड़ देने के बाद कुंदन के ऐसे वाक्य और हरकतें रमा को हमेशा अपनी स्थिति नीची हो जाने का एहसास दिलाते हैं। चुभते हैं। यहां तक कि एक बार उसका अवचेतन खुद उसे नौकरों की जगह और कुंदन को अपनी जगह खड़ा करके आदेशों को दुहराने की कल्पना कर लेता है।

कहानी कला की पराकाश्ठा अंतिम दृश्य में देखने को मिलती है जब पहली तारीख को लंच पर घर आया कुंदन ऑफिस लौटते समय जेब से नोटों के दो बंडल निकालता है। छोटा बंडल रमा को देते हुए कहता है–'ये आया, बैरा और खासामा के हैं। अस्सी, अस्सी और सौ।'' तथा बड़े बंडल के लिए कहता है–'और यह तुम्हारा है।''

यानी अत्यंत कलात्मक तरीके से लेखिका यह कहने में सफल हो जाती हैं कि जैसे कुंदन नई नौकरी में बड़ा अफसर बन गया है वैसे ही मा अध्यापिका से घरेलू नौकर की 'नई नौकरी' में लग गई है। स्त्री विमर्श का यही सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है जो स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता को उसके व्यक्तित्व और जीवन के सभी रूपों में स्वतंत्रता की बुनियाद होने की घोषणा करता है। निःसंदेह यह कहानी अपने इस मकसद में शत–प्रतिशत सफल है और अपनी कला में नए कीर्तिमान स्थापित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मन्नू भंडारी : ''महाभोज'' सन् 1979.
2. जगदीश चन्द्र : धरती धन न अपना।
3. मोहन नैमिशराय : अपने–अपने पिंजरे (भाग–एक 1995 ई0 भाग–दो सन् 2000).
4. ओम प्रकाश बाल्मिकी : जूठन सन् 1997.
5. सूजन पाल चौहान : तिरस्कृत सन् 2002.
6. डॉ0 तुलसी राम : मुर्दहिया सन् 2010.
7. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा तक ।
8. उग्रः फागुन के दिन चार।
9. रांगेय राघव : कब तक पुकारूं।
10. फणीश्वर नाथ ''रेणु'' : मैला आँचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड।
11. अमृतलाल नागर : सतरंज के मोहरे, अमृत और विष।
12. उदयशंकर भट्ट : लोक–परलोक।

*****